प्रो० महमूद शीरानी—एक महान विद्वान

साहिबज़ादा अमजद अली खाँ
M. A. (Alig) B. Ed.
फारसी अनुवादक
अरबी एवं फ़ारसी शोध संस्थान, टोंक

उर्दू साहित्य के इतिहास में मीर अम्मन, मोहम्मद हुसैन आज़ाद, मौलाना हाली, सर सैयद अहमद खाँ, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मौलवी अब्दुल हक गद्य साहित्य के स्तंभ माने जाते हैं, परन्तु महमूद शीरानी इन स्तंभों पर बनने वाली वह मेहराब हैं जिसने उर्दू साहित्य की शोभा में चार चाँद लगा दिये हैं। यदि हम उर्दू साहित्य में से महमूद शीरानी का नाम निकालदें तो उर्दू साहित्य का इतिहास अधूरा रह जायगा। महमूद शीरानी वह हस्ती हैं जिसने उर्दू साहित्य में शोध कार्य की नींव रखी। महमूद शीरानी ने जहाँ उर्दू साहित्य में शोध के क्षेत्र में अपना योगदान किया वहाँ उनके अख़तर शीरानी जैसे सपूत ने उर्दू रूमानी कविता के क्षेत्र में एक संग-ए-मील स्थापित किया। इस प्रकार पिता पुत्र दोनों ने ही उर्दू साहित्य के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। एक शोध के क्षेत्र में बादशाह था तो दूसरा कविता के क्षेत्र में शहजादा।

हाफिज महमूद शीरानी बहुत बड़े शोधकर्त्ता, इतिहासकार, आलोचक, प्रसिद्ध विद्वान और उर्दू साहित्य के महापण्डित थे। अगर उनको जगतगुरु कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके पूर्वज प्रतिष्ठित वंश से सम्बन्ध रखते थे। उनके पूर्वज सुलतान महमूद गजनवी की फौज में थे। वे सोमनाथ की विजय के पश्चात् खाटू (राजपूताना) में बस गये। बाद में इसी कस्बे के समीप उन्होंने अपनी अलग बस्ती "ढानी शीरानियाँ" बसाली। यह स्थान अब शीरानी आबाद कहलाता है। हाफिज साहब के पिता मुन्शी इस्माईल खाँ टोंक के स्टेट मैनेजर और मुख्तारे आम थे उनकी गणना रियासत के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित लोगों में की जाती थी।

महमूद शीरानी का जन्म टोंक (राजस्थान) में 5 अक्टूबर सन् 1880 में हुआ था जो कभी संसार में पूर्वी साहित्य का केन्द्र माना जाता था जहाँ आज भी अरबी एवं फारसी शोध संस्थान ने टोंक का नाम संसार में उजागर कर रखा है। साहबजादा शौकत अली खाँ ने अपने अथक प्रयत्नों से एक-एक पन्ने को एकत्र करके टोंक में सन् 1978 में अरबी एवं फारसी

का एक स्वतन्त्र निदेशालय स्थापित कराकर टोंक को उसी पुराने ख्याति प्राप्त स्थान पर पहुँचा दिया है। आज शौकतअली खाँ अरबी एवं फारसी शोध संस्थान के नाम से पहचाने जाते हैं तो अरबी एवं फारसी शोध संस्थान को शौकत अली खाँ के नाम से जाना जाता है। शौकत अली खाँ और संस्थान एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं।

हाफिज महमूद शीरानी ने अपने बाल्यकाल में पवित्र कुर्आन को कंठस्थ करके हाफिज की उपाधि ली। उन्होंने उर्दू, फारसी और अरबी की शिक्षा पुराने ढंग से प्राप्त की। फिर जोधपुर अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने चले गये। सन् 1897 में उन्होने ने मिडिल पास किया। उसके बाद उनके पिता ने उन्हें लाहौर भेज दिया जहाँ वे शमसुल ओलोमा मुफती अब्दुल्ला टोंकी के संरक्षण में रहे जो उस समय अरबी विभाग में यूनिवर्सिटी ओरियन्टल कालेज लाहौर में कार्यरत थे। इस कालेज से उन्होने मुन्शी, मुंशी आलिम और मुन्शी फाज़िल क्रमशः 1898, 1899 और 1901 में पास किये। सन् 1904 में जोधपुर से ऐनट्रेंस पास करके सितम्बर 1904 में वे बार-एटला के लिए इंगलैण्ड चले गये। वहाँ लिकन-इन में प्रवेश ले लिया परन्तु दिसम्बर में अत्यधिक बीमारी और आपरेशन के कारण शिक्षा में बाधा पड़ गई। जुलाई 1906 में उनके पिता का निधन होने पर उन्हें वापस अपनी मातृभूमि लौटना पड़ा। दिसम्बर 1906 में अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए वे पुनः इंगण्लैड चले गये। परन्तु कुछ समय पश्चात भाइयों ने पैसा भेजना बन्द कर दिया। इस कारण उन्हें अपनी शिक्षा बीच में ही बन्द करके नौकरी करनी पड़ी। प्रोफेसर आरनल्ड की सहायता से कुछ अनुवाद का कार्य मिल गया। एक पुस्तकालय की सूची तैयार की। इसके साथ-साथ हस्तलिखित ग्रन्थों और दुर्लभ ग्रंथों का व्यापार प्रारम्भ कर दिया। जब भी समय मिलता ब्रिटिश म्यूजियम और इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में शोध अध्ययन किया करते। लंदन में वे सैयद अली ब्रिलग्रामी जसटिस अमीर अली, सर अब्दुल्ला अलहामून सहरवर्दी, अल्लामा डा० मोहम्मद इकबाल, सर अब्दुल कादिर और सर टामस आरनल्ड जैसे ख्याति प्राप्त विद्वानों के संपर्क मे आये। पेन इसलामिक सोसाइटी लंदन के सचिव रहे। सन् 1909–10 में लंदन यूनिवर्सिटी की एक फारसी की परीक्षा में प्रथम आने पर इन्हें आउज़ले छात्रवृत्ति मिली, जिससे ये प्रोफेसर आरनल्ड के निर्देशन में एक वर्ष तक अरबी का अध्ययन कर सके। सन् 1910-11 में उन्होंने डा० हेनरी स्टब की पुरानी पुस्तक 'तुलू व उरुजे इस्लाम' प्राप्त की और उसे अपनी लंबी भूमिका के साथ प्रकाशित किया। हस्तलिखित ग्रंथों एवं पूर्वी दुर्लभ ग्रंथों की पहचान में विशेषज्ञ होने के कारण उन्हें प्रसिद्ध फर्म लोजक ने पहिले तो अपना सलाहकार बनाया और बाद में भागीदार बनाकर इन ग्रंथों के क्रय के लिये सन् 1913 में हिन्दुस्तान भेजा। यहाँ आये हुए अभी एक ही वर्ष बीता था कि 1914 में प्रथम विश्व युद्ध हो गया जिसके कारण लंदन इन वस्तुओं का भेजना संभव नहीं हो सका। बाद में बहुत से ग्रन्थ आपने लंदन भेजे भी। सन् 1918 में टोंक रियासत की राजनीतिक परिस्थिति के कारण टोंक छोड़कर 'ढानी शीरानियाँ' चले गये। सन् 1921 में अपने बेटे दाऊद खाँ (अख्तर शीरानी) को ओरियन्टल कालेज लाहौर में प्रवेश दिलवाने लाहौर आये तो अल्लामा इक़बाल, सर अब्दुल कादिर और

दूसरे पुराने मित्रों से मिलना हुआ जिनके प्रयत्नों से इस्लामिया कालेज में उनकी नियुक्ति एक व्याख्याता के रूप में हो गई। 1928 में पंजाब यूनिवर्सिटी ओरियन्टल कालेज में उर्दू के पहले व्याख्याता नियुक्त हुये। सन् 1940 में यहाँ से रिटायर होने पर सन् 1941 में टोंक चले गये। कुछ समय अंजुमन तरक्की उर्दू हिन्द देहली में भी काम किया परन्तु स्वास्थ्य खराब होने के कारण इसे भी समाप्त करना पड़ा। 15 फरवरी सन् 1946 में टोंक की बनास नदी के ककराज घाट पर उनका निधन हुआ और वहीं दफन किये गये जहाँ आज भी उनका मज़ार है।

हाफ़िज़ महमूद शीरानी के व्यक्तित्व के विषय में सर अब्दुल कादिर, मौलवी मोहम्मद शफ़ी, डॉ० अब्दुल सत्तार सिद्दीकी, डॉ० सर मोहम्मद इकबाल, डा० सैयद अब्दुल्ला, शेख़ अब्दुल अज़ीज बेरिस्टर और प्रोफेसर अब्दुल बासित इत्यादि विद्वानों ने जो कुछ लिखा है उसका सार यह है कि वे मितभाषी, सुशील, व्यवहारकुशल मृदु भाषी और बा मुरव्वत थे। अपने कार्य में कठिन परिश्रमी, प्रत्येक वस्तु को अपनी पैनी दृष्टि से उसके प्रत्येक कोण से परख कर उसकी तह तक पहुँचना उनका ही कार्य था। वे एक उच्च कोटि के अनुसंधानकर्त्ता, उच्च-कोटि के आलोचक और महान इतिहासकार थे। इसके साथ-साथ स्नेही एवं आदर्श गुरु थे। वे खर्च बहुत करते थे परन्तु अपने मित्रों, दुर्लभ ग्रंथों, सिक्कों और फरमान आदि पर। वे कहा करते थे कि पैसा कोई चीज नहीं है यही बातें याद रहने वाली हैं। वे दुर्लभ ग्रंथों को हर दशा में ऊंचे से ऊंचे मूल्य पर क्रय कर लेते थे। उधर अपना सादा जीवन व्यतीत करते थे परन्तु अपने मित्रों को अच्छे-अच्छे पकवान खिला कर उन्हें प्रसन्नता होती थी। हाफ़िज़ साहब जो कुछ कमाते थे वे दुर्लभ ग्रंथों, पुराने सिक्कों, फ़रमानों, वसलियों आदि पर खर्च कर देते थे। टोंक में भी वे जुमेरात, कमनीगरों और कबाडियों से हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त करते थे।

जब महमूद शीरानी यूनीवर्सिटी की नौकरी से रिटायर हुए तब उन्होने वर्षों से एकत्र किए हुए हज़ारों दुर्लभ एवं अमूल्य ग्रंथ बहुत कम मूल्य पर पंजाब यूनीवर्सिटी को भेंट कर दिए। किसी अन्य स्थान पर उनको मुंह माँगा धन मिल सकता था परन्तु उनका दृष्टिकोण पुस्तकों के बेचने के बजाय उन्हें भविष्य की पीढ़ी के लिए सुरक्षित कर देना था।

कुछ लोगों की धारणा है कि शीरानी सा० को दूसरों की त्रुटि निकालने का ऐसा चसका पड़ गया था कि वे सदैव लोगों की गलतियों की खोज में रहा करते थे और इस प्रकार उनका शोधात्मक कार्य नकारात्मक प्रकार का है। परन्तु यह निराधार है। यदि हाफ़िज़ महमूद शीरानी ने शताब्दियों से चली आ रही गलत मान्यताओं को अपने कलम के जोर से दूर किया तो यह छिद्रान्वेषण नहीं अपितु वास्तविकता का द्योतक है, यह ध्वंसात्मकता नहीं अपितु रचनात्मकता थी। यदि उन्होने शाहनामें के विषय में सुलतान महमूद गज़नवी और फिरदोसी से संबन्धित शताब्दियों से दोहराई जाने वाली कहानी को असत्य सिद्ध कर दिखाया, अगर उन्होने "युसुफ़ जुलेख़ा" का बोझ फिरदोसी के सर से उठा लिया, यदि उन्होंने "दीवान-ए मोईनी"

को उसके वास्तविक लेखक मौलाना मोईबुद्दीन फ़राही के हवाले कर दिया, अगर उन्होने शेख़ फरीदुद्दीन अत्तार की ओर मसनवी 'मज़हरूल अजाइब' और मसनवी 'लसानुल गेब' का समर्पण असत्य सिद्ध कर दिया, अगर उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि 'खालिक बारी' और 'किस्सा चहार दुर्वेश' अमीर खुसरो की रचना नहीं है और अगर उन्होंने 'पिरथी राज रासा' को पेशेवर भाट का सिद्ध कर और यह गोरियों के बजाय मुग़लों के समय की सिद्ध कर दिखाया तो क्या इन गलत मान्यताओं और धारणाओं और निराधार तथ्यों को उखाड फेंकना नकारात्मकता है ? वैसे तो हाफ़िज़ महमूद शीरानी की हर रचना अपने महत्त्व की है परन्तु इनके शोधात्मक और आलोचनात्मक साहित्य में इनकी जिन रचनाओं को बहुत ही महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय समझा जाता है वह हैं 'तनकीदे शेरुल अजम' 'पंजाब में उर्दू,' 'फिरदोसी और उनके 'शाहनामें', पर मिकालाते 'खालिक बारी' के वास्तविक लेखक का पता 'पिरथी राज रासा,' के विषय में कुछ गलत धारणाओं को समाप्त करना, 'तज़किरा-ए-आबेहयात' पर आलोचना, 'मिकालाते शीरानी'. 'मिकालात हाफिज़,' 'महमूद शीरानी दस खण्ड,' 'मकातीब हाफ़िज़ महमूद शीरानी', 'फरग हाफ़िज़ मेहमूद शीरानी'।

हाफिज़ मेहमूद शीरानी का एक और क्षेत्र था। वह था पुरानी मुद्राएँ और पाण्डु-लिपियाँ उन्होने असंख्य पुरानी मुद्राएँ एकत्र की थीं और उनसे अनुसंधात्मक कार्य में जिस प्रकार से लाभ उठाया वह किसी से छिपा हुआ नहीं है।

बहुत कम लोग हाफ़िज़ महमूद शीरानी को कवि के रूप में जानते हैं परन्तु शीरानी साहब एक बहुत अच्छे कवि थे। उन्होंने बहुत अच्छी गजलें, मसनवी, मरसिया, और नज़में लिखी, जिनमें 'टीपू सुलतान' लिखीं गई नज़म उनकी शाहकार नज़म है। केवल एक मात्र यही नज़म उन्हें कवियों की. अग्र पंक्ति में ला खड़ा कर देती है।

1. **'तनकीदे शेरुल अजम':-** तनकीद शेरूल अजम शीरानी की एक ऐसी आलोचना है जिससे फारसी साहित्य और इस्लामी-इतिहास पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अल्लामा शिबली की रचना पर हाफ़िज़ साहब ने वह पकड़ की है कि उसका जबाब आजतक कोई नहीं दे सका है महमूद शीरानी ने अपनी आलोचना में अनवरी, निज़ामी और विशेषकर शेख फरीदुद्दीन अत्तार पर जो प्रकाश डाला है उससे फ़ारसी साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय खुल जाता हैं।

2. **पंजाब में उर्दू :-** जिस प्रकार से 'तनकीदे शेरूल अजम' लिखने के लिये विशेष दक्षता की आवश्यकता थी उसी प्रकार से पंजाब में उर्दू के प्रसंग पर भी कोई प्रकांड पडित ही कलम उठा सकता था। उर्दू भाषा के प्रारम्भ के सिलसिले में एक प्रचलित धारणा यह बन गई थी कि उर्दू देहली की प्राचीन भाषा है महमूद शीरानी में अपनी रचना में यह प्रमाणित किया है कि उर्दू देहली की प्राचीन भाषा नहीं बल्कि पंजाब से पंजाबियों के साथ देहली

आई और इसमें देहली और इसके आसपास बोली जाने वाली ब्रज भाषा के शब्द भी मिल गए। महमूद शीरानी ने यह भी प्रमाणित किया है कि भारत में उर्दू का प्रचलन उन ही दिनों से हुआ है जब से मुसलमान इस प्राय: द्वीप में आबाद हैं। इस भाषा का बाबर के आने से पहिले गुजरात व दक्कन में प्रयोग होता था। भारत में नवीं शताब्दी में लिखे जाने वाले फ़ारसी शब्द कोषों से भी यह प्रमाणित होता हैं कि उन्हीं दिनों में तमाम हिन्दुस्तानी इस्लामी राज्यों में उर्दू बोली जाती थी। महमूद शीरानी ने यह भी प्रमाणित किया है कि 60 प्रतिशत शब्द पंजाबी व उर्दू में मिले जुले हैं। महमूद शीरानी के इन तथ्यों को कोई भी आलोचक आजतक नहीं झुटला सका है। उन्होने उर्दू को ब्रज भाषा की बेटी न बतलाकर ब्रज भाषा की बहिन सिद्ध कर दिखाया।

3. **ख़ालिक़ बारी**:–ख़ालिक बारी के सम्बन्ध में सभी लोग यह जानते हैं कि यह 'अमीर खुसरो' की रचना है। यहां तक कि मो० हुसैन आजाद ने भी लिखा है कि अमीर खुसरो ने भटयारी के लड़के के लिए यह पुस्तक लिखी थी महमूद शीरानी ने इन सभी धारणाओं को अमान्य घोषित किया है। महमूद शीरानी ने इसी पुस्तक में से एक शब्द 'जीतल' लिया है और प्रमाणित किया है कि 'जीतल' नामक सिक्का उस युग में प्रचलित था जब कि ख़ालिक बारी में इस प्रकार से उल्लेख नहीं है। दूसरे महमूद शीरानी ने लिखा है कि इस पुस्तक में स्थान स्थान पर शेयरों के वजन में कमी है जबकि अमीर खुसरो जैसा उस्ताद ऐसी त्रुटियां कदापि नहीं कर सकता है इसके अलावा महमूद शीरानी ने एतिहासिक तथ्य देकर यह प्रमाणित किया है कि 'ख़ालिक़ बारी' आठवी शताब्दी के बजाय ग्यारहवीं शताब्दी की रचना है।

4. **पिरथीराज रासा**:– 'पिरथी राज रासा' को इतिहासकार और भाषा विशेषज्ञ वर्षों से एक मूल स्रोत्र समझते रहे। मौलाना आजाद ने भी उर्दू जुबान की तारीख में इसे सबसे पुराना माना है। जेम्स टाड जैसे ख्याति प्राप्त इतिहासकार भी इसे मूल भूत आधार मानते हैं। उदयपुर, जोधपुर इत्यादि राजस्थानी रियासतों ने भी 'रासा' के प्रकाश में अपने इतिहास की रचना की है। 'पिरथी राज रासा' मुसलमानों की अपमान जनक और कायरता पूर्ण गाथाओं से भरी पड़ी है। मुसलमान इतिहासकार, आलोचक और शोधकर्त्ता भी हिन्दुओं और अंग्रेजों की तरह इसके प्रशसक और पुजारी बन गये। वे इसका अर्थ समझे बिना ही इसे इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत्र समझते रहे। इस किताब को पूर्व और पश्चिम में इतना महत्त्वपूर्ण समझ लिया गया था कि इसे नकली बताना कोई सरल कार्य नहीं था परन्तु महमूद शीरानी ने न केवल इसे नकली बताया अपितु यह कह दिया कि यह किसी बड़े कवि की रचना नहीं बल्कि किसी भाट की मन घंदत रचना है जो ऐसा प्रतीत होता है कि उसने किसी राजा से धन प्राप्त करके लिखी है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस रचना के विषय में स्वयं हिन्दू लेखकों ने भी इसके विरुद्ध सन् 1886 से लिखना प्रारम्भ कर दिया था

और कविराज श्यामल दास ने वुल्लम खुल्ला लिखा था कि यह पुस्तक गोरियों के काल की नहीं बल्कि सत्रवीं शताब्दी के मध्य में लिखी गई है। डॉ० व्यूलर ने भी सन् 1893 में इसके मूल स्रोत होने का खण्डन किया। महमूद शीरानी ने बताया कि जिस पुस्तक का रचयिता अपने नायक पृथ्वी राज को उसके काल से नव्वे वर्ष पूर्व मान लेता है और जो इतना अनपढ़ और इतिहास से अनभिज्ञ है कहता है कि पृथ्वी राज ने गोरी को बीस बार हराया हालाँकि दोनों में दो बार ही युद्ध हुआ है और दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज न केवल हारा है बल्कि मारा गया है तो इस रचयिता का रूप केवल एक पेशेवर भाट से ज्यादा और क्या हो सकता है।

5 **तन्क़ीद आबे हयात:–** महमूद शीरानी ने अपनी अन्तिम अवस्था में इसको लिखा था इसलिये यह पूरी नहीं हो सकी। मौलाना आज़ाद ने अपनी मूल कृति में उर्दू का आग़ाज़ शाहजहाँ के युग (1059) हिजरी से माना है, परन्तु महमूद शीरानी ने अपनी आलोचना में इस तथ्य को झुटलाया है और प्रमाणित किया है कि उर्दू का प्रचलन आठवीं शताब्दी हिजरी से पहिले हो गया था। महमूद शीरानी ने मौलाना आज़ाद के बताए हुए शब्द 'रेख़ता' का दूसरा ही अर्थ बताया है।

मौलाना आज़ाद ने अपनी रचना में वली दक्कनी का सन तीन मोहम्मद शाही में देहली पहुँचना बताया है परन्तु महमूद शीरानी का विचार है कि वली दक्कनी तो इस साल से 15 साल पहले ही मर चुका था। महमूद शीरानी ने मौलाना आज़ाद के मूल ग्रंथों में से 'हुक्का' शब्द को लेकर प्रमाणित किया है कि मौलाना आज़ाद ने यह गलत लिखा है कि 'जब एक चम्मों साक़न' स्त्री 'हुक्का' लेकर अमीर खुसरो के सामने खड़ी हो गई तो अमीर खुसरों ने यह विचार करके कि इसका दिल नहीं टूटे दो घूंट ले लिये। महमूद शीरानी ने लिखा है कि तम्बाकू अमरीका का शब्द है और इसका प्रचलन अकबर के काल से हुआ है इसलिये अमीर खुसरो के हुक्का पीने का वर्णन झूंठा है।

इसी प्रकार 'किस्सा चहार दुर्वेश' को अमीर खुसरो की रचना माना जाता रहा है। मगर हाफ़िज़ सा० इसका खडंन करते हुए लिखते हैं कि इसमें तूमान और अशरफी का वर्णन है परन्तु यह दोनों सिक्के बाद के काल के हैं। दूरबीन का भी वर्णन है मगर दूरबीन का आविष्कार यूरोप में 17वीं शताब्दी में हुआ। आगे हाफ़िज़ सा० ने बताया है कि 'किस्सा चहार दुर्वेश' में जिन कवियों के शेर लिखे गए उनमें से प्राय: कवि ऐसे हैं जो 'अमीर खुसरो के पश्चात् के काल से संबन्ध रखते हैं उदाहरणार्थ नज़ीरी, उर्फी, फुगानी इत्यादि इसलिये अमीर खुसरो अपने बाद आने वाले कवियों के अशआर कैसे लिख सकते थे। वास्तविकता यह है कि जैसे जहाँगीर अपनी जीवनी में गालिब और जिगर के शेर लिखे।

हाफ़िज़ साहब का क्षेत्र वास्तव में शोध, आलोचना, इतिहास और शिक्षा था परन्तु उन्हें इन विभागों के इतने अनगिनत पहलुओं पर दक्षता थी कि उन्होंनें इस कला में अपने हाथों

से कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा। उर्दू भाषा, उर्दू साहित्य, फ़ारसी भाषा, फ़ारसी साहित्य, इस्लामी इतिहास, इस्लामी संस्कृति, छंद रचना (उरुज़), पाण्डु लिपियाँ, हस्तलिखित ग्रंथ, तस्वीरें, मोहरें, वसलियाँ, कतबे और साथ ही काग़ज, सियाही, और शब्दों की लिखाई व बनावट के वे ऐसे विशेषज्ञ थे कि उनकी राय इस संबन्ध में अन्तिम मानी जाती थी। इस संबन्ध में डा० सर मोहम्मद इक़बाल, शेख़ अब्दुल अज़ीज़ बेरिस्टर इत्यादि जैसे बड़े बड़े विद्वान उनसे जानकारी प्राप्त किया करते थे।

महमूद शीरानी बहुत बडे शोधकर्त्ता, आलोचक, इतिहासकार और शिक्षा शास्त्री थे। वे प्रत्येक घटना की सच्चाई पर जान देते थे और इस संबन्ध में वे किसी की त्रुटि कदापि माफ करने को तैयार नहीं थे। सच्चाई उनका धर्म बन गया था। उन्होंने इस संबन्ध में बड़े-बड़े विद्वानों की भी परवाह नहीं की। उन्होंने इतिहास और साहित्य की बड़ी-बड़ी त्रुटियों को सच्चाई के सांचे में ढाल दिया है। उन्होने ऐसी-ऐसी पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं को चकना चूर कर दिया जिनकी जड़ें साहित्य के क्षेत्र में बहुत गहरी हो चुकी थीं। उन्होंने उन पहाड़ जैसे बुतों को तोड़ कर नये परन्तु सच्चे बुतों को तराशा है जो आज भी अपनी सच्चाई की कसम खाये जिन्दा हैं। हाफिज महमूद शीरानी का कलम सदैव सच्चाई के लिये उठा और जिसने सदैव सच्चाई का साथ दिया। उनके कारनामे उर्दू साहित्य में अमूल्य धरोहर हैं जो उन्हें रहती दुनियाँ तक जिन्दा रखेंगे। महमूद शीरानी बेरिस्टर बनना चाहते थे परन्तु ईश्वर को कुछ और ही मन्ज़ूर था। वास्तविकता यह है कि बेरिस्टर संसार में असख्य हैं परन्तु शीरानी बहुत कम हैं।

❖—❖